

सर्वांगीण विकास का पर्यावरण एवं जनजातियों पर प्रभाव

* विजय कुमार गोनेकर

शुद्ध पर्यावरण एवं संतुलित पारिस्थितिकी मानव जीवन की प्राणवायु है। मनुष्य जब परिस्थितिकी तंत्र के साथ छेड़छाड़ करता है और प्राकृतिक व्यवस्था की सहजता में हस्तक्षेप करता है तो उसके अप्रत्याशित परिणाम होते हैं। मनुष्य अपने पोषण की धुन में स्वयं अपनी ही क्षति कर रहा है। आज आर्थिक गतिविधियाँ पारिस्थितिकी की अपेक्षा ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गई हैं तथा मनुष्य आर्थिक मानव हो गया है।

उद्योगों के विकास के साथ यह नारा दिया गया है कि औद्योगिकीकरण अपनाओं या विनष्ट हो लेकिन देखे तो ये नारा "औद्योगिकीकरण अपनाओं और विनष्ट हो" में बदल गया है। औद्योगिकीकरण की अधिकता ने पर्यावरण प्रदूषण एवं मानव विनाश की एक श्रृंखला तैयार कर ली है।

विकास एवं पर्यावरण—पर्यावरण अब विश्व में सर्वाधिक चर्चा का विषय बन गया है मानव अपनी आवश्यकताओं का सर्वांगीण विकास हेतु प्राकृतिक संतुलन को नष्ट कर दिया है। जिसके कारण नवीन समस्याएँ सामने आ गई हैं। विकास का सर्वाधिक प्रभाव प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक पड़ा है जिनमें मुख्यतः वनों पर इसका प्रभाव अधिक पड़ा है।

देश के भौगोलिक क्षेत्र में 7 करोड़ 70 लाख 10 हजार हेक्टेयर में वन हैं जो विश्व के कुल क्षेत्र का 15 प्रतिशत हैं, जो कि पिछले दशक से लगातार घटते जा रहा है।

विकास एवं जनजातियों की समस्याएँ—विकास एवं औद्योगिकीकरण की इस अंधी दौड़ में सबसे ज्यादा प्रभावित प्रकृति के सबसे अधिक निकट रहने वाले तथा उन्हीं पर अधिक से अधिक आश्रित लोगों के अर्थात् जनजातियों को किया है। नये उद्योग लगते हो या नदी घाटी परियोजनाओं उन्हें लागू करने के पूर्व भूगर्भिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, जनांकिकीय, वनस्पति, वन्यजीव एवं अन्य पहलुओं की गहन छानबीन नहीं की जाती है, आर्थिक पक्ष एवं विकास की योजना का ही प्रबल होती है। नदी घाटी परियोजनाओं के परिणाम स्वरूप भारत में भारत में सन् 1951-1971 तक 4.01 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र का विनाश हुआ। दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ, विभिन्न किस्म के पेड़ पौधे तथा जीव जन्तु भी खतरे में पड़ गये हैं। इन विकास योजनाओं से जनजातियों का बड़े पैमाने पर विस्थापन होता है जिससे उनके प्राकृतिक आवास रोजी-रोटी आदि-आदि पर संकट उत्पन्न हो जाता है।

भारत में बांधों द्वारा प्रभावित जनजातियों के विस्थापन को निम्न सारणी में प्रदर्शित किया गया है—

वनो का मूल्यांकन वनोत्पादन एवं पर्यावरणीय संतुलन दोनों द्वारा होता है सन् 1992 के विश्व विकास प्रतिवेदन के अनुसार प्रत्येक देश में वन क्षेत्र में कमी आयी है। भारत में भी वन क्षेत्र में क्रमशः कमी आयी है तथा आज कुल क्षेत्रफल के

14 प्रतिशत में ही आबाद है। इस प्रकार जनजातियों का आवासीय क्षेत्र भी घट रहा है। अनियंत्रित खनन का भी जनजातियों पर प्रभाव पड़ा है कोयले आदि के निकल जाने के बाद रिक्त स्थान के कारण खाने धँस जाती है और अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

परियोजना का नाम	राज्य	विस्थापन से प्रभावित जनसंख्या	विस्थापित जनजातीय लोगों का प्रतिशत
सरदार सरोवर	गुजरात	2,00,000	57.68
महेश्वर	मध्यप्रदेश	20,000	60
कोमलकारी	बिहार	66,000	88
माही बजाज सागर	राजस्थान	38,40,000	76.28
पोलावरम	आंध्रप्रदेश	1,50,000	52.90
मंधन एवं पेचेट	बिहार	93,874	56.40
इन्द्रावती	उड़ीसा	18,500	8.20
पोंग	हिमाचल प्रदेश	80,000	56.25
तुलतुली	महाराष्ट्र	13,600	51.61
भारवरा	हिमाचल प्रदेश	36,680	34.76

जनजातियों का निवास क्षेत्र प्रायः पर्वतीय क्षेत्रों और वनांचलों में रहा है। उनके निवास क्षेत्र भी दुर्गमता भी जनजातीय विकास का अवरोधक बनी रही है। जनजातीय समुदायों की आर्थिक निर्भरता वन और वनोपज पर अधिक रहीं हैं, यही कारण है कि उनका अर्थोपार्जन भी सीमित रहा है। हमारे देश में जनजातियों की जनसंख्या कुल जनसंख्या की लगभग एक चौथाई है। इतनी बड़ी जनसंख्या के कल्याण और विकास के बिना समग्र विकास की कल्पना दिव्य स्वप्न के समान है।

इस प्रकार औद्योगिकीकरण तथा तीव्र आर्थिक विकास से न केवल जनजातियाँ ही प्रभावित हो रही हैं, बल्कि पूरी की पूरी जनसंख्या ही प्रभावित हो रही है। अतः मानव के अस्तित्व को बचाने तथा प्राकृतिक संसाधनों के बचाने की दृष्टि में रखकर पोषणीय विकास की संकल्पना का विकास किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ—

1. राय अरुंधती, "दी ग्रेटर कॉलन प्युटर दी फ्रंट लाइन", जून 4, 1999
2. मिश्र आर. "दी ग्लोबल हाईमेशन ऑफ एनवार्डरमेंटल प्रबलम्स", 1997
3. सिंह बी.जी., "आदिवासी धरोहर" म.प्र. (2000)
4. नदीन हसनैन (2003) "जनजातीय भारत", जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
5. रघुवंशी अरुण (1990), "पर्यावरण तथा पदु ण" म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

* पीएच.डी. शोधाथी, डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान, महू (म.प्र.)